प्रकरण पाँच

युद्ध

१९३६ ई. से अब तक की परिस्थितियों में मैं केवल तर्क-वितर्क करता रहा कि बिना किसी साधन और सामर्थ्य के क्या यह कठिन कार्य मुझे आरम्भ करना चाहिए; किन्तु चूँकि मुझे किसी ने निरुत्साहित नहीं किया है, इसलिए मैंने इस कार्य को आरम्भ करने का साहस किया है।

—श्रील प्रभुपाद,
बैक टु गॉडहेड पत्रिका

"मठ में आग" करीब करीब तुरन्त लग गई। एक वरिष्ठ शिष्य का कहना था कि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के उत्तराधिकारी के रूप में आचार्य एक होना चाहिए, जो सारे दीक्षा-संस्कार कराए और सभी विवादों को हल करे। किन्तु भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने ऐसा कभी नहीं कहा था। उन्होंने एक आचार्य की व्यवस्था कभी नहीं सुझाई थी। प्रत्युत गौड़ीय मठ के सदस्यों को उन्होंने एक द्वादश सदस्यीय शासी मंडल बनाने और सामूहिक प्रयत्न करने का आदेश दिया था। किन्तु उस आदेश का त्याग कर दिया गया और यह विचार प्रधान बन गया कि नेता एक होना चाहिए। बारह के स्थान पर केवल एक व्यक्ति को कार्यभार लेना चाहिए और वह एक व्यक्ति कौन हो, इसके लिए होड़ मच गई।

दो दलों में संघर्ष हुआ। श्रील भक्तिसिद्धान्त के एक प्रधान उपदेशक, अनन्त वासुदेव, बड़े महत्त्वाकांक्षी थे और कुछ संन्यासी समर्थकों की सहायता से उन्होंने अपना दावा जोर से पेश किया। एक दूसरे व्यक्ति, कुंज बिहारी की आँख दुष्ट प्रकृति के कारण जायदादों पर थी। श्रील भक्तिसिद्धान्त के अधीन वे एक प्रधान प्रबन्धक रह चुके थे और अब उन्होंने कलकत्ता के विशाल मन्दिर तथा भारत-व्यापी गौड़ीय मठ की सभी सम्पत्तियों और वस्तुओं पर अधिकार का दावा किया। यद्यपि अपने वसीयतनामा में श्रील भक्तिसिद्धान्त ने

इच्छा प्रकट की थी कि गौड़ीय मठ की सम्पत्तियों और निधियों की व्यवस्था के लिए उनके शिष्यों द्वारा एक शासी मण्डल चुना जाये, कुंजबिहारी ने उनके वसीयतनामा की वैधता को ही चुनौती दे दी। उनका और उनके समर्थकों का तर्क था कि चूँकि श्रील भक्तिसिद्धान्त ने सारी सम्पत्तियाँ भगवान् के नाम पर प्राप्त की थीं, इसलिए वे उनके वैध स्वामी नहीं थे और उनके भावी स्वामित्व का निर्धारण वे नहीं कर सकते थे। इस तरह कुंजविहारी और अन्य लोग, पूर्व आचार्य की स्थिति की वैधता और धर्मानुकूलता के पक्षों को लेकर विवाद पर तुल गये।

श्री भक्तिसिद्धान्त के तिरोधान के तुरन्त बाद मुकदमेबाजी आरम्भ हो गई। गौड़ीय मठ के अधिकतर सदस्यों से समर्थित अनन्त वासुदेव ने दावा किया कि उत्तराधिकारी आचार्य होने के नाते वे सभी सम्पत्तियों के स्वामी और निदेशक थे। किन्तु यद्यपि कुंजबिहारी के समर्थक अल्पसंख्या में थे, उन्होंने न्यायालय में वकीलों के माध्यम से अपना दावा प्रस्तुत करके बहुसंख्यकों की अवज्ञा की। कुंजबिहारी और उनके समर्थकों के अधिकार में मायापुर का चैतन्य मठ तथा अन्य मन्दिर आ गये। वासुदेव के समर्थकों ने दूसरी इमारतों पर अधिकार कर लिया। विग्रह और हाथापाई होने लगी। गौड़ीय मठ का प्रचार-कार्य बन्द हो गया।

गौड़ीय मठ के क्रियाकलापों में भाग ले सकने की अभय की असमर्थता अचानक उनके पक्ष में गई। मठ में एक सदस्य की अपेक्षा वे दर्शक अधिक थे और कम से कम ऊपर से वे मिशनरी कार्यकर्ता की तुलना में घर-गृहस्थी वाले व्यवसायी अधिक थे। इससे वे अपने आप झगड़े से दूर रहे। बम्बई और इलाहाबाद के मठों से वे अवश्य सम्बन्धित थे, पर उनमें न उनकी व्यवस्थापक की स्थिति थी, न उन पर उनका स्वामित्व का दावा था, न मुकदमेबाजी में उनकी कोई भूमिका थी। न ही अधिकार के लिए संघर्ष में वे किसी का पक्ष लेने की इच्छा रखते थे। अन्य बहुत से शिष्यों की भाँति वे भी यह देखकर विमूर्च्छित-से थे कि किस प्रकार उनके आध्यात्मिक गुरु की परस्पर-सहयोग की शिक्षाओं की अवहेलना हो रही थी और उनके मिशन को मुकदमेबाजी में झोंक दिया गया था। अभय जानते थे कि श्रील भक्तिसिद्धान्त की इच्छा थी कि मिशन के नेता आपस में मिलजुलकर कार्य करें; इसलिए झगड़ने वाले दलों में से किसी के साथ उनकी सहानुभूति नहीं थी। दोनों दल श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के अपमान रूप थे।

लेकिन अभय प्रचारक बनना चाहते थे। यद्यपि "अंग्रेजी में अच्छा प्रचारक" बनने के बारे में वे सोच अधिक रहे थे और व्यावहारिक रूप से कर कम रहे थे, तथापि यह स्वाभाविक ही था कि गौड़ीय मठ उनके प्रचार-कार्य का अच्छा माध्यम बनता। गौड़ीय मठ के प्रकाशनों में उनके लेख छप चुके थे और वे गुरुभाइयों के साथ इलाहाबाद और

बम्बई के केन्द्रों में कार्य करते आये थे। अतः उनके लिए यह सोचना स्वाभाविक था कि अपने आध्यात्मिक गुरु के मिशन की सेवा करके वे स्वयं आध्यात्मिक गुरु की सेवा कर सकते थे। किन्तु जो गौड़ीय मठ हमेशा से भगवान् चैतन्य के सन्देश के विशुद्ध और निश्शंक प्रचार के लिए प्रख्यात था, वह अब द्वन्द्वमय गुटबाजी में फँसता माना जाने लगा। गौड़ीय मठ के छिन्न-भिन्न होने का उन पर गहरा प्रभाव हुआ। तत्कालीन परिस्थिति में वे प्रचार के लिए अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेश का पालन कैसे कर सकते थे? पहले उनके प्रचार के मार्ग में प्रमुख बाधा परिवार के प्रति उनकी प्रतिबद्धता थी; अब उनकी बाधाएँ कई गुना हो गईं। अब लाचार होकर उन्हें मठ के अन्दर चलने वाले झगड़े के परिणाम की प्रतीक्षा करनी थी। भगवान् कृष्ण क्या करने वाले हैं? वे सोच रहे थे।

• • •

१९३८ ई.

बम्बई के व्यवसाय में घाटा होने के कारण अभय, जो अब ४२ वर्ष के थे, अपने परिवार के साथ कलकत्ता वापस चले गये और ६, सीताकांत बनर्जी लेन में एक मकान किराये पर लेकर रहने लगे। सड़क एक तंग गली जैसी थी, जिसके दोनों ओर तीन-मंजिले मकान खड़े थे। उनका आफिस दूसरी मंजिल पर था, जिसके सामने सड़क थी। परिवार उसके ऊपर रहता था। उन्होंने संलग्न मकान भी किराए पर ले लिया, जिसका नम्बर ७ था। उसकी दूसरी मंजिल पर आसुत जल, डेज *पेन लिनेमेंट*, विमल टानिक, फोड़े का *अल्पा* नाम का इंजेक्शन और अन्य अनेक दवाइयाँ बनाने के लिए उन्होंने एक रासायनिक प्रयोगशाला स्थापित की। मकान के पीछे स्थित एक छोटे से *आउटहाउस* को भी उन्होंने प्रयोगशाला का अंग बना लिया। सामने उन्होंने बड़ा-सा साइन बोर्ड लटका दिया—अभय चरण दे एंड संस। उस पर मूंछदार अभय चरण का चित्र बना था।

कभी-कभी अपनी मदद के लिए वे दो या तीन नौकर रख लेते थे, लेकिन ज्यादातर वे अकेले ही अपना कार्य करते। आसुत जल से भरे शीशे के कलश वे बंगाल कम्पनी और ग्लूकोनेट जैसे एजेंटों को प्रदान करते। डेज *पेन लिनेमेंट* का विज्ञापन करने वाली उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तिका छापी : "वात रोग, गठिया और सभी तकलीफों से आराम देने वाली अक्सीर दवा।" पुस्तिका में लिखा था कि यदि कोई वातरोग, गठिया आदि स्थायी रोगों से छुटकारा पाना चाहता है, तो डेज *पेन लिनेमेंट* के इस्तेमाल के अलावा उसे "शराब पीने और दूसरी नशीली वस्तुओं के सेवन से परहेज करना चाहिए और उसका खाना-पीना बहुत सादा और शुद्ध होना चाहिए, जैसे सब्जियाँ और दूध।"

कलकत्ता में नये कारोबार को शीघ्र सफलता मिली; लेकिन अभय का मन उसमें नहीं

लगता था। वे केवल कर्तव्य-पालन के लिए उसमें लगे थे—उन्हें अपने परिवार का पालन करना था। कलकत्ता में उनके नये परिचितों ने देखा कि मन से वे भगवद् भक्त थे—वे व्यवसायी थे, परिवार के कर्ता थे, लेकिन व्यवसाय और परिवार की तुलना में उनका मन लिखने और प्रचार करने में अधिक लगता था।

चंडी मुकर्जी (निकटस्थ बिहारी स्ट्रीट के एक पड़ोसी) : *उनका मन केवल भक्तिपरक कार्यों में लगता था। व्यवसाय तो वे केवल अपने परिवार का पालन करने के लिए करते थे। लाभ कमाने, धन इकट्ठा करने या धनी बनने में उनकी रुचि नहीं थी।*

चरण मुकर्जी (अभय के निकट पड़ोसी) : *अभय चरण दे उन सभी तर्कविहीन बातों को बड़े धैर्य के साथ सुनते जो हममें से कोई भी उनके सामने रखता। दर्शन शास्त्र से अनजान मैं बहुत सी तर्कहीन बातें उनसे कहता और वे हमेशा धैर्यपूर्वक उनको सुनते थे। वे किसी बात से उद्वेलित नहीं होते थे। वे सदैव शान्त रहते थे और मुझे भगवान् के बारे में बताते थे। वे केवल कृष्ण भगवान् की बात करते थे। वे गीता का अनुवाद कर रहे थे और अपना व्यवसाय चला रहे थे।*

उनके पड़ोसी प्राय: उन्हें सामने के कमरे में खाट पर बैठे देखते थे। वे अपने आध्यात्मिक गुरु की पुस्तकें पढ़ते रहते थे और कभी कभी संस्कृत के श्लोक सस्वर पढ़ा करते थे। जो कोई उनके पास आता, उनसे दर्शनशास्त्र पर वाद-विवाद उन्हें पसन्द था। उनका परिवार प्राय: ऊपर रहता। अभय धोती-कुर्ता पहने, या कभी कभी केवल धोती और बनियान पहने, नीचे सामने के कमरे में अकेले बैठे रहते। प्राय: वे लिखने में लीन रहते, जबकि उनके बच्चे, उसी मकान के पीछे के हिस्से में रहने वाले गांगुली परिवार के बच्चों के साथ दरवाजे के बाहर खेला करते।

आस-पास के सभी पड़ोसी एक संयुक्त परिवार के सदस्यों की भाँति मिलजुलकर रहते थे—और अभय पड़ोसियों से उन्मुक्त वार्ता करते थे, लेकिन केवल वैष्णव दर्शन पर, और व्यवसाय के बारे में कभी-कभी ही। श्रीमान् गांगुली को अभय की बात "विद्वत्तापूर्ण और हमेशा बहुत दार्शनिक" लगती। अभय कृष्णभावनामृत की विचारधारा में निमग्न थे और सामान्य छोटी-मोटी बातों में भी भगवान् कृष्ण का हवाला देते और भगवद्गीता के उस वर्णन की ओर संकेत करते, जिसमें भगवान् कृष्ण को भौतिक और आध्यात्मिक जगत के मूलाधार कहे गये हैं। अपनी प्रयोगशाला में कार्य करते हुए, या बोतल बेचने वाले मुसलमान व्यापारी से खाली बोतलें खरीदते समय, या दवाएँ बेचने के लिए बाहर यात्रा करते समय, वे हमेशा भगवान् के बारे में बात करते या सोचा करते।

उन दिनों कलकत्ता में किसी का भगवान् की भावना में रुचि रखना कोई असामान्य बात नहीं थी। अभय ने देखा कि बोतल का मुसलमान व्यापारी अब्दुल्ला भी बहुत धार्मिक

था। एक दिन अभय ने अब्दुल्ला से, जो पहले बहुत गरीब था, लेकिन व्यवसाय से धनी हो गया था, पूछा, "अब आपके पास पैसा हो गया है। उस पैसे का उपयोग आप कैसे करेंगे?" बोतल के व्यापारी ने उत्तर दिया, "प्रिय महोदय, मेरा इरादा एक मस्जिद बनाने का है।"

• • •

इस बीच गौड़ीय मठ का युद्ध चलता रहा। दोनों ही दलों के उद्देश्य दूषित थे और दोनों ही दल अपने आध्यात्मिक गुरु की शिक्षाओं से विरत हो गये थे। सम्पत्तियों के स्वामित्व का निर्णय मुकदमेबाजी से कराने का प्रयत्न ही इस बात का प्रमाण था कि भक्त लोग अपने आध्यात्मिक गुरु की स्पष्ट इच्छा का जो उनके वसीयतनामे में उल्लिखित थी, उल्लंघन कर रहे थे। मुकदमे का क्रम वर्षों तक चलता रहा, लेकिन इस कानूनी लड़ाई ने, न उन्हें एकता सिखाई, न उनके मन को शुद्ध किया। एक न्यायालय का निर्णय अनन्त वासुदेव के पक्ष में था, लेकिन उससे ऊँचे न्यायालय ने मठ की दो-तिहाई जायदाद कुंजबिहारी को दे दी और एक तिहाई वासुदेव को। यद्यपि वासुदेव को कम जायदाद मिली उनके अनुयायियों की संख्या अधिक थी; वे उन्हें मठ की शिक्षाओं को पुनर्जीवित करने पर अधिक तुले लगते थे। लेकिन बाद में एक औरत रख लेने के कारण जब संन्यास के आदर्शों से उनका पतन हो गया, तब उनके दल और भी छिन्न-भिन्न हो गये।

अधिकतर संन्यासी अपने सिद्धान्तों पर अटल बने रहे, लेकिन उनमें से बहुतों ने संघर्ष-रत दोनों दलों के अधिकार क्षेत्र का घृणा-वश त्याग कर दिया। भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने अपने भिन्न भिन्न आश्रम बना लिए : जैसे गौड़ीय मिशन, चैतन्य गौड़ीय मठ, आदि। गौड़ीय मठ का एकीकृत अस्तित्व, जिसमें बहुत से मन्दिरों, कई मुद्रण-गृहों का समावेश था और जिसके अधीन सैकड़ों अनुयायी सहयोगपूर्वक कार्य करते थे, समाप्त हो गया। भक्त लोग श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के माध्यम से प्राप्त भगवान् चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का पालन करते रहे, लेकिन सहयोगपूर्वक कार्य के अभाव में उनकी पूर्व सम्मिलित क्षमता में ह्रास हो गया। स्वामित्व और बड़प्पन का माया जाल आध्यात्मिक गुरु के आदेश पर हावी हो गया और भगवान् चैतन्य की विश्वव्यापी शिक्षाओं के प्रचार आन्दोलन का श्रील भक्तिसिद्धान्त का उद्देश्य ध्वस्त हो गया।

• • •

अभय जहाँ भी जाते, उनके गुरुभाई उनकी ओर आकृष्ट हो जाते। श्रीधर महाराज— वही श्रीधर जिनके साथ उन्होंने बम्बई में कार्य किया था और जिन्हें वे बहुत अच्छा भक्त

और विद्वान मानते थे—अभय से उनके बनर्जी लेन-स्थित निवास पर मिले और यह समाचार उन्होंने श्रीधर महाराज को दिया, जो उन दिनों मायापुर में अपने आश्रम में रहते थे। श्रीधर महाराज गौड़ीय मठ के गुटों से अलग हट गये थे, लेकिन एक संन्यासी के नाते वे अब भी प्रचार में लगे थे और वैष्णव साहित्य को प्रकाशित करने में रुचि रखते थे। वे कलकत्ता में एक आश्रम रखना चाहते थे; इसलिए अभय के ७ नम्बर वाले मकान में उनकी रासायनिक प्रयोगशाला के ऊपर उन्होंने बीस रुपए महीने पर तीसरी मंजिल में चार कमरे किराए पर ले लिए।

अब श्रीधर महाराज, पुरी महाराज और भक्तिसारंग महाराज जब कभी कलकत्ता आते, तो वे एक एक छोटे कमरे में अलग अलग ठहर पाते। संन्यासियों और ब्रह्मचारियों का वहाँ नियमित आश्रम बन गया और श्रीधर महाराज ने सामने एक साइन बोर्ड लगा दिया : देवानन्द सरस्वती मठ।

श्रीधर महाराज द्वारा मायापुर में एक मठ और कलकत्ता में उसकी शाखा की स्थापना गौड़ीय मठ में फूट का उत्तर था। मुकदमे और उसकी अपील तथा दर-अपील के परिणाम की प्रतीक्षा किये बिना, वे अन्य संन्यासियों की तरह नये शिष्यों को दीक्षित करने और प्रचार करने में लगे थे। अभय को श्रीधर महाराज और दूसरों को, जो छोटे-से आश्रम में उनके सहयोगी बन गये थे, प्रोत्साहन देने में प्रसन्नता होती। यहाँ अभय और श्रीधर महाराज तथा उनके अनुयायी झगड़ालू गुटों से अलग रहकर कृष्णभावनामृत के प्रचार की अपनी योजनाओं को कार्यान्वित कर सकते थे।

संन्यासी अपना भोजन अलग बनाते, पूजा करते और सुबह-शाम कीर्तन और भाषण करते। अभय अपने परिवार के साथ रहते थे, वे भोजन और पूजा अलग करते थे, लेकिन *श्रीमद्भागवत* पर श्रीधर महाराज से चर्चा करने वे प्रायः जाया करते थे। वे अपनी छत से अपने आध्यात्मिक गुरु द्वारा बाग बाजार में निर्मित गौड़ीय मठ-भवन की ऊंची गुम्बद देखा करते थे, जिसके स्वामित्व के लिए अब दो दलों में घोर संघर्ष चल रहा था।

श्रीधर महाराज और उनके सहायकों के प्रचार-कार्यक्रमों में अभय प्रायः साथ देते, और उनमें मृदंग बजाते। और जब श्रीधर महाराज बीमार पड़ जाते, तब अभय उनके अनुयायियों के साथ प्रचार-कार्यक्रमों का नेतृत्व करते, कीर्तन करते, मृदंग बजाते और *श्रीमद्भागवत* पर भाषण देते।

श्रीधर महाराज : *धन कमाने के लिए कड़ी मेहनत करते अभय हमें नहीं दिखाई दिए, न वे धनी थे, न ही उनके पास बहुत पैसे थे। पारिवारिक मामलों की तुलना में वे आध्यात्मिक मामलों की ओर अधिक आकृष्ट थे। उन्होंने अपने व्यवसाय की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में मुझसे कभी विचार-विमर्श नहीं किया कि व्यवसाय में लाभ होने वाला है*

या घाटा, अथवा वह यह करने की योजना बना रहे हैं या वह। उनके पास इतना आर्थिक साधन नहीं था कि उसमें से वे कुछ मिशन को दे सकने की स्थिति में हों।

• • •

अभय वैष्णव साहित्य लिखने के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे। उनके आध्यात्मिक गुरु उनसे बहुत प्रसन्न थे और *दि हारमोनिस्ट* के संपादक से उन्होंने कहा था, "वह जो कुछ लिखे, उसे प्रकाशित करना।" यदि वे अपने व्यवसाय के लाभों में किसी प्रकार वृद्धि कर सकें, तो उसका उपयोग अंग्रेजी में पुस्तकें प्रकाशित करने में किया जा सकता था, क्योंकि उनके आध्यात्मिक गुरु ने कहा था कि, "यदि तुम्हारे पास कभी पैसे हों, तो पुस्तकें छापना।" यह तो निश्चित ही था कि गौड़ीय मठ से यह काम होने का नहीं था; कुंजबिहारी ने मुकदमे का खर्च निकालने के लिए भक्तिसिद्धान्त के छापेखानों को बेच दिया था। नहीं, अभय को अकेले ही यह कार्य करना होगा। उन्हें अपना व्यवसाय चलाना था और साथ ही लिखने और पुस्तकें छपाने के लिए भी प्रयत्नशील होना था। और श्रील भक्तिसिद्धान्त का भी नुस्खा यही था : "अच्छा है कि वह आपके समुदाय से बाहर रह रहा है। जब समय आयेगा, तो वह स्वयं ही सब कुछ करेगा।"

१९३९ ई. में अभय ने *इन्ट्रोडक्शन टू गीतोपनिषद्* लिखा। यह कार्य छोटा था, लेकिन वह एक दिन उनके द्वारा *भगवद्गीता* के अंग्रजी में टीका-समेत अनुवाद का कार्य लिए जाने के इरादे का संकेत था। यह सच है कि उस ग्रंथ की अंग्रेजी में अनेक टीकाएँ मौजूद थीं, लेकिन उनमें से अधिकतर के लेखक निर्विशेषवादी या दूसरे थे, जो गीता के मूल भाव को—कुरुक्षेत्र की रणभूमि में स्वयं भगवान् कृष्ण के मुख से *भगवद्गीता* सुनते हुए अर्जुन के मनोभाव को—अभिव्यक्त करने में असमर्थ थे। अभय जानते थे कि चैतन्य महाप्रभु और गुरु-शिष्य परम्परा के उपदेशों पर आधारित अंग्रेजी में टीका लिखकर वे *भगवद्गीता* को उसके सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर सकेंगे। इसलिए उन्होंने आरम्भ कर दिया। जब भी उन्हें समय मिलता, वे लिखते। यद्यपि एक मीनमेखी वैयाकरण को उनकी अंग्रेजी में दोष दिखाई दे सकता था, लेकिन उनका आशय हमेशा स्पष्ट होता था।

• • •

अपनी 'प्रस्तावना' में अभय ने उस समय का उल्लेख किया, जब एक स्कूली लड़के के रूप में उन्होंने, 'विद्यारत्न' नामक एक भाषण सुना था। भाषण का प्रतिपाद्य यह था कि भगवान् का अस्तित्व नहीं है और न उसका अस्तित्व हो सकता है। यदि भगवान् होते, तो सभी धार्मिक प्रतिद्वन्द्विताओं का अन्त करने के लिए वे पृथ्वी पर अवश्य प्रकट हुए होते,

किन्तु चूँकि भगवान् ने मनुष्य को इस प्रकार अनुगृहीत नहीं किया है, इसलिए हमें अपने मन से उसके अस्तित्व का विचार बिल्कुल निकाल देना चाहिए। अभय ने आगे लिखा कि श्रोताओं में सभी कम उम्र के लड़के थे, अत: वे भाषण की विषयवस्तु की गहराई में नहीं गये; तो भी भाषणकर्ता के तर्कों से प्रभावित होकर अधिकांश लड़के, "नास्तिकता के ऊँचे विचारों को लेकर घर गये और इस प्रकार नास्तिक बन गये।"

अभय को नास्तिकता के निष्कर्ष से संतोष नहीं था, "क्योंकि मेरे पिताजी ने मुझे श्री श्री राधा गोविन्द की आराधना में प्रशिक्षित किया था। लेकिन 'विद्यारत्न' भाषण सुनने के बाद नास्तिकता और अनास्तिकता के बीच मेरे मन में संघर्ष छिड़ गया था।" बाद में अपने आध्यात्मिक गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त से सुनकर अभय की समझ में आ गया था कि भगवान् का अस्तित्व कार्य के हर क्षेत्र में है। "लेकिन उसे देखने की दृष्टि हमारे पास नहीं है," अभय ने लिखा, "यदि भगवान् स्वयं को पृथ्वी पर प्रत्यक्ष भी करें तो संघर्ष-रत सांसारिक जीव, आपसी विग्रह रोककर, उन्हें या उनके अवतार को, अपनी मूढ़ता-वश, देखेंगे नहीं। भगवान् के अनुग्रह से ऐसा कर सकने का जन्मसिद्ध अधिकार केवल व्यक्तिगत आत्मा को है।"

भगवद्गीता विद्या का "सच्चा रत्न" है। और गीता में भगवान् कृष्ण संसार में लड़ने वाले लोगों को घोषित करते हैं, "मैं यहाँ हूँ, लड़ाई न करो।" वह नास्तिक, जिसने 'विद्या रत्न' के विषय में भाषण किया था, रत्न से अंधा हो गया था और इसलिए श्री भगवान् को न वह देख सकता था, न उनसे अभिभूत हो सकता था। अत: वह दूसरों को भी तथाकथित रत्न बनने के लिए राजी करने के उद्देश्य से बोलता गया था।

अपने आध्यात्मिक गुरु के अनुकरण पर अभय ने शुद्ध ईश्वरवाद के विरोधियों का सामना करने में आक्रामक प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया। अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेश का पालन करते हुए अपने को अंग्रेजी में प्रचारकर्ता के रूप में विकसित करने में अभय केवल विद्वत्तापूर्ण तटस्थ प्रस्तुतीकरण नहीं कर रहे थे; वे लड़ाई के लिए भी राजी और तत्पर थे— चाहे वह लड़ाई आधुनिक अज्ञेयवाद के विरुद्ध हो या वैष्णवधर्म के सनातन शत्रु मायावादी निर्विशेषवाद के विरुद्ध हो।

यद्यपि *भगवद्गीता* में आख्यायित श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण का तरीका बताने वाले विद्वान कम ही थे, लेकिन ज्ञान का सारांश प्रस्तुत करने वाले ग्रंथ के रूप में *भगवद्गीता* का सम्मान लगभग सभी करते थे। इसलिए श्री भगवान् और धर्म के विषय में भ्रम फैलाने वालों का सामना करने के लिए गीता सर्वोत्तम उपाय थी। "अज्ञेयवादियों, देवत्वारोपण-वादियों, मानवीकरणवादियों, निर्विशेषवादियों, एकाधिदेववादियों, सर्वेश्वरवादियों और अद्वैतवादियों के लिए गीता एक चुनौती थी।" यद्यपि गीता पर छह सौ से भी अधिक

टीकाएँ लिखी जा चुकी थीं, लेकिन वे उन लोगों द्वारा लिखी गई थीं, जिनके "मन में श्री भगवान् के प्रति आन्तरिक घृणा थी," और इसलिए वे अपूर्ण थीं। अभय ने लिखा कि "ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति *भगवद्गीता* के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ सकते, जैसे बोतल में बन्द शहद तक मक्खी की पहुंच नहीं हो सकती।"

अभय ने भारतीय संस्कृति का वर्णन उसकी विचारों की गहराई और निष्कर्षों की प्रत्यक्ष संश्लिष्टता के कारण उसे अपार सागर बताकर किया। उन्होंने घोषणा की कि "लेकिन इस पुस्तक में प्राप्त धर्म ग्रंथों के हवाले से जो भारतीय संस्कृति और विचार का लिखित इतिहास है, मैं सिद्ध कर दूँगा कि श्रीकृष्ण स्वयं परम भगवान् हैं।"

• • •

७ बनर्जी लेन में रहने वाले संन्यासी अभय के विचार और इरादों से प्रभावित हुए। चूँकि यह परम्परा थी कि एक विशेष रूप से योग्य वैष्णव को उसके गुणों के अनुसार कोई उपाधि दी जाये, इसलिए भक्तिसारंग गोस्वामी ने अभय को भक्तिसिद्धान्त की उपाधि देनी चाही। लेकिन श्रीधर महाराज ने इसे अनुपयुक्त समझा कि अभय को वही उपाधि प्रदान की जाये, जो उनके आध्यात्मिक गुरु की थी, और उन्होंने कहा कि अभय की उपाधि को भक्तिवेदान्त कर दिया जाये। अभय आभारी थे। उनकी उपाधि में धर्म के प्रति भक्ति का उस गहन विद्वत्ता से मेल था, जो भगवान् चैतन्य के विद्वान शिष्यों के द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती आ रही थी। उन्हें अपने गुरुभाइयों का यह रवैया पसन्द आया और उन्होंने इस उपाधि को कृष्णभावनामृत के प्रचार के अपने आध्यात्मिक मार्ग के प्रति और अधिक प्रतिबद्धता के रूप में स्वीकार किया।

अभय श्रीधर महाराज के संसर्ग में बराबर बने रहे और *श्रीमद्भागवत* के विषय में उनसे उनका विचार-विमर्श चलता रहा। उन्हें व्यापक प्रचार के लिए अभय उत्साहित करते, यद्यपि श्रीधर महाराज प्रचारक की तुलना में विद्वान अधिक थे और प्रचार हेतु इधर-उधर जाने में सकुचाते थे। कई अवसरों पर अभय ने श्रीधर महाराज को अपने साथ जाने के लिए और गाँधी और नेहरू पर यह अभियोग लगाने के लिए कि वे *भगवद्गीता* के सिद्धान्तों का पालन क्यों नहीं करते, मनाने का प्रयास किया।

७ बनर्जी लेन के आध्यात्मिक साहचर्य का एक फल 'प्रपन्न जीवनामृत' नामक ग्रंथ था, जिसे श्रीधर महाराज ने संकलित किया। यह वैष्णव धर्म के विभिन्न ग्रंथों के श्लोकों का एक संग्रह था, जिसमें रूप गोस्वामी की रचनाओं में से भी उद्धरण सम्मिलित थे। समर्पण के छह विभागों के अनुसार यह छह अध्यायों में विभाजित था। देवानन्द सरस्वती मठ के संन्यासियों के साथ मिलकर अभय ने इसके प्रकाशन के लिए अर्थ-व्यवस्था की।

इस प्रकार मित्रों के सामूहिक प्रयत्न से यह प्रकाशित हुआ।

• • •

सितम्बर ३, १९३९

भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने घोषणा की कि भारत जर्मनी के साथ युद्ध की स्थिति में है। इस प्रकार इंगलैंड ने भारतवासियों की सहमति के बिना ही भारत को युद्ध में झोंक दिया। यद्यपि स्वतंत्रता के लिए कटिबद्ध भारत को निश्चित रूप से यह विदेशी अधिकार-प्रदर्शन बहुत बुरा लगा, लेकिन युद्ध के विषय में लोगों के विचार भिन्न-भिन्न थे। भारत स्वतंत्रता चाहता था, तब भी पाश्चात्य अधिनायकवाद के विरुद्ध सहराष्ट्रों के पक्ष का वह समर्थक था; पूर्व की ओर से साम्राज्यवादी जापान से उसे आक्रमण का डर था। एक लेखक ने उस समय की भावना से भरे नई देहली के एक विद्यार्थी से पूछा, "चूँकि आप अँग्रेजों से घोर घृणा करते हैं, क्या आप यह पसन्द करेंगे कि जापान भारत पर आक्रमण करे और उसे जीत ले?" विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "नहीं, लेकिन हम भारतवासी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह अँग्रजों को उस आघात को सहने की शक्ति दे जिसके वे पात्र हैं।"

युद्ध आरम्भ होने के समय यद्यपि भारत की सेना में केवल १७५,००० सैनिक थे, अँग्रेजों ने किसी तरह उनकी संख्या बढ़ाकर बीस लाख कर ली। अनिवार्य भरती नहीं हुई; लेकिन अँग्रजों ने सारे देश में भरती करने वाले एजेंट भेजे, विशेषकर पंजाब में, जहाँ स्थानीय गरीब वर्ग के लोगों के लिए सैनिक सेवा का बड़ा आकर्षण था। पंजाबी बड़े अच्छे लड़ाकू साबित हुए, जबकि बंगालियों की भरती अधिकारियों, डॉक्टरों, ठेकेदारों और क्लर्कों के रूप में हुई। भारतीय सैनिकों को इजिप्ट, इराक, सीरिया, फारस, मलाया, बर्मा और आसाम में लड़ाई के मोर्चों पर भेजा गया।

एक ओर अँग्रेज भारतीयों को युद्ध के लिए सन्नद्ध करने की कोशिश कर रहे थे, दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन, जो पिछले बीस वर्षों से अधिक अभय से रुक-रुककर चलता आया था, बहुत सक्रिय बन गया। काँग्रेस दल के सदस्यों ने युद्ध के कार्य में सहयोग देने से इनकार कर दिया और भारत की स्वतंत्रता के लिए गारंटी चाही। कुछ ने सोचा कि इंगलैंड जर्मनी के साथ बुरी तरह फँसा है, इसलिए विद्रोह करके शक्तिपूर्वक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए वह बहुत उपयुक्त समय है। गाँधीजी की स्थिति एकान्त शान्तिवादी की थी और उन्होंने भारत की रक्षा के लिए भी शस्त्र ग्रहण करने की नीति का विरोध किया था। लेकिन १९४२ ई. के आते-आते वे अँग्रेजों के और अधिक विरोधी बन गये और उनके प्रति 'भारत छोड़ो' की सीधी, स्पष्ट नीति का एलान किया। हजारों

भारतीयों ने नारे लगाकर, और यहाँ तक कि रेल की लाइनें तोड़कर, उनके आन्दोलन का समर्थन किया।

अभय के युद्धप्रिय पुराने स्कूल के साथी सुभाषचन्द्र बोस ने अँग्रेजों से अपने ढंग की लड़ाई छेड़ दी। वे जर्मनी के हिटलर से मिले और उसे राजी कर लिया था कि जब जर्मनों के हाथों भारतीय सैनिक पकड़े जाएँगे तो जर्मनी उन्हें बोस को वापस कर देगा और वे उन्हें अपनी राष्ट्रीय सेना में रखेंगे। इस सेना को लेकर बोस की योजना भारत लौटकर भगत् पर आक्रमण करके और भारत-भूमि से अंग्रेजों को भगा देने की थी। किन्तु जर्मनी में अपनी प्रगति से असन्तुष्ट होकर, बोस ने जापान के टोजो के साथ एक ऐसा ही समझौता किया और शीघ्र ही हजारों गुरखे और सिक्ख (जो भारत की सेना में सबसे अच्छे लड़ाकू थे) अँग्रेजी सेना छोड़कर सिंगापुर में बोस के स्वतंत्रता-सेनानियों में भरती हो गये। बोस उत्तर की ओर से भारत पर आक्रमण करने के लिए सेना तैयार करने लगे।

तब १९४३ ई. में अँग्रेजों ने देखा कि जापानी, जो बर्मा को पहले ही जीत चुके थे, भारत के द्वार पर पहुँच गये हैं, बंगाल के बिल्कुल निकट। "वंचित करो" नामक नीति का अनुसरण करते हुए अंग्रेजों द्वारा खाद्य-सामग्री ले जाने वाली बहुत सी भारतीय नावों को डुबो दिया गया और धान की बड़ी फसलें नष्ट कर दी गईं, इस डर से कि कहीं ये सब शत्रु के हाथ में न पड़ जायें। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्न के अभाव में और व्यापार के लिए नावों के बिना भारतीय अकाल-ग्रस्त होकर मरने लगे। १५० वर्षों के बीच बंगाल में पड़े अकालों में यह अकाल सबसे भयानक था। सरकार ने खाद्यान्नों की कीमतों पर से सभी कन्ट्रोल हटा दिए, और ऐसे लोग जो गगनस्पर्शी भावों पर खाद्यान्न नहीं खरीद सकते थे, कलकत्ता की सड़कों पर मरने लगे।

श्रील प्रभुपाद : *मुझे अनुभव हुआ—सरकार ने कृत्रिम अकाल पैदा किया था। युद्ध चल रहा था, इसलिए श्रीमान् चर्चिल की नीति लोगों को अभाव-ग्रस्त रखने की थी, जिससे वे स्वेच्छा से सैनिक बनें। इसीलिए यह नीति कार्यान्वित की गई। बड़े लोगों ने सारा चावल इकट्ठा कर लिया। चावल छः रुपए मन बिक रहा था। अचानक वह पचास रुपए मन बिकने लगा। मैं बनिए की दुकान में चावल खरीदने गया था। अचानक बनिए ने कहा, "नहीं, नहीं; मैं और नहीं बेचूँगा!" उस समय चावल छः रुपए मन था। इसलिए वह एकाएक बेचने को तैयार नहीं था। कुछ घंटे बाद, मैं फिर खरीदने गया, और चावल का भाव पचास रुपए मन हो गया था।*

सरकार द्वारा नियुक्त एजेंट, चावल और दूसरी चीजें, जो हर दिन की आवश्यकताएँ हैं, खरीदने लगे। वे कोई भी कीमत दे सकते हैं, क्योंकि मुद्रा उनके हाथों में है। वे तथाकथित सैकड़ों डालर के नोट छाप सकते हैं और भुगतान कर सकते है। आदमी यह

सोचकर सन्तुष्ट हो जाता है कि, "मेरे पास सैकड़ों डालर हैं।" लेकिन है वह कागज का एक टुकड़ा...

यही नीति थी। "तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं, चावल नहीं हैं? तो दूसरा मार्ग खुला है—हाँ, तुम सिपाही बन जाओ। बहुत सारा पैसा मिलेगा तुमको।" गरीबी के कारण लोग वहाँ जाने लगे। मैंने देखा है। बाजार में चावल उपलब्ध नहीं था। लोग भूखे थे; मर रहे थे।

अभय ने अपने परिवार को जिन्दा रखने-भर को किसी तरह चावल खरीद लिया। लेकिन उन्होंने देखा कि भिखमंगों की आबादी नित्य सैकड़ों की संख्या में बढ़ रही थी। वे देखते कि हर महीने सड़कों की पटरियों पर और खुली जगहों में भिखमंगों की भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। भिखमंगे कुत्रिम चूल्हे बनाकर अपना खाना पकाते और खुले में या पेड़ों के नीचे सोते थे। उन्होंने देखा कि भूख से मरते बच्चे एक कौर खाने के लिए कूड़े के ढेरों को छानते फिरते थे। उनके लिए अगला कदम केवल यह रह गया था कि कूड़े-कचरे में अपने हिस्से के लिए वे कुत्तों से लड़ाई करें, और कलकत्ता की सड़कों में यह भी एक आम दृश्य हो गया। अंग्रेज सरकार के पास युद्ध के कामों के अतिरिक्त और किसी काम के लिए समय नहीं था। उसकी कोशिश केवल उन लोगों को बचाने की थी, जो युद्ध के लिए आवश्यक थे। आम जन-समुदाय के लिए साम्राज्य का नुस्खा सीधा-सादा और एक-सा ही था—भूखे मरो।

श्रील प्रभुपाद : *एक अमरीकी सज्जन इस समय मौजूद थे। उनकी टिप्पणी थी, "लोग इस तरह भूख से मर रहे हैं। हमारे देश में तो क्रान्ति हो जाती।" हाँ, लेकिन भारत की जनता की शिक्षा इस प्रकार हुई है कि कृत्रिम अकाल का सामना करते हुए भी दूसरों की सम्पत्ति को चुराने की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई। लोग भूख से मर रहे थे, इतने पर भी उनका विचार था, कि "ठीक है, यह सब कुछ भगवान् का दिया हुआ है।" वैदिक सभ्यता का यही मूलभूत सिद्धान्त था।*

अभय जानते थे कि प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत अभाव को कोई स्थान नहीं है। भगवान् की व्यवस्था से पृथ्वी पर्याप्त भोजन पैदा कर सकती है। कठिनाई तो मनुष्य के लोभ के कारण थी। "संसार में अभाव या कमी नहीं है," श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कहा था, "कमी केवल कृष्णभावनामृत की है।" और अभय ने १९४३ ई. के अकाल को इसी दृष्टि से देखा। पहले से भी अधिक अब यह आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्रासंगिक लगती थी कि कृष्णभावनामृत सर्वप्रथम आवश्यकता है। अन्यथा मनुष्य को उसकी इस दूषित मनोवृत्ति से कैसे रोका जा सकता है, जिसके वशीभूत होकर वह लोभी बनता है, संग्रह करता है, युद्ध करता है और इस प्रकार लाखों के लिए दुर्दशा उत्पन्न करता है।

अभय भारत में अंग्रेजों के घृणित कार्यों को देख चुके थे—वे यहाँ के जुलाहों के

अँगूठे काट देते थे जिससे उनके द्वारा बुना गया सूती कपड़ा विदेशी कपड़े का मुकाबिला न कर सके; वे बेकसूर, बेहथियार नागरिकों को सीधे गोली मार देते थे, वे जान-बूझकर अकाल पैदा करते थे, वे इस भ्रम का प्रचार करते थे कि भारतीय सभ्यता बहुत पिछड़ी हुई है—इतना होने पर भी अभय को विश्वास नहीं था कि भारत के स्वतंत्र हो जाने पर स्थिति में अवश्य ही सुधार हो जायेगा। जब तक कि यहाँ का नेतृत्व कृष्णभावनामृत में सराबोर न हो—और यह न गाँधी के विषय में सत्य था, न सुभाषचन्द्र बोस के विषय में—तब तक सरकार देश को कोई वास्तविक हल नहीं दे सकती, भले ही कोई कामचलाऊ व्यवस्था उसके द्वारा सम्भव हो जाये। धर्मग्रंथों और सन्तों द्वारा कथित ईश्वरीय नियमों के पालन बिना कोई भी सरकार मानव-दुखों में वृद्धि ही करेगी।

• • •

तब प्रतिदिन कलकत्ता पर बम-वर्षा होने लगी। बम कुछ विशेष क्षेत्रों पर ही गिराए जाते, जैसे कित्तपुर बन्दरगाह पर और उत्तर कलकत्ता में श्याम बाजार पर जो सीताकांत बनर्जी लेन में अभय के मकान के बिल्कुल निकट था। अमरीकी हवाई जहाज चीन और जापान के लक्ष्यों पर आक्रमण करने के लिए कलकत्ता के निकट के हवाई अड्डों से उड़ते थे, इसलिए कलकत्ता पर हवाई आक्रमण अनिवार्य प्रतिकारात्मक प्रतीत होते थे। ये जवाबी हवाई हमले जापान की ओर से थे।

या क्या ऐसा था? कुछ लोगों का कहना था कि ये आक्रमण सुभाषचन्द्र बोस की सेना की ओर से थे, क्योंकि बम अधिकतर योरपियनों के घरों पर गिरते थे। लेकिन कलकत्ता के निवासियों के लिए इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता था कि आक्रमण किसकी ओर से हो रहे थे। पहली बम वर्षा के बाद लोगों ने शहर छोड़ दिया। ब्लैक आउट लागू हो गये, और रात में पूरा नगर अंधेरे में रहने लगा।

श्रील प्रभुपाद : *पूरा कलकत्ता खाली हो गया। शायद केवल मैं और कुछ अन्य लोग रह गये। मैंने अपने पुत्रों को नवद्वीप भेज दिया, और मेरी पुत्री का तो ब्याह हो ही गया था। मेरी पत्नी ने कलकत्ता से बाहर जाने से इनकार किया। उसने कहा, "मुझ पर बम गिरने दो, लेकिन मैं कहीं जाऊँगी नहीं।"* इसलिए मुझे कलकत्ता में रहना पड़ा। मैंने रात-*रात-भर कलकत्ता पर बम-वर्षा होती देखी है। मैं भोजन कर रहा था जब भोंपू बजा। प्रवन्ध यह था कि—हर घर में सुरक्षा-कक्ष बना था। मैं भूखा था, इसलिए पहले मैंने भोजन समाप्त किया। तब मैं सुरक्षा कक्ष में गया, और बम-वर्षा आरम्भ हो गई। ची—श्याम! मैं सोच रहा था यह भी कृष्ण का एक रूप है। लेकिन वह रूप बहुत प्रिय नहीं था।*

• • •

इस प्रकार की आपदाओं के बीच अभय को कृष्णभावनामृत का प्रचार और भी अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ। युद्ध से थके-हारे संसार के लोगों से वह कुछ कहना चाहते थे, और एक प्रभावोत्पादक मंच के लिए उनका मन ललकने लगा—किसी तरह के प्रकाशन के लिए जिसके माध्यम से वे संसार की समस्याओं को शास्त्रों की दृष्टि से अपने आध्यात्मिक गुरु जैसी निर्भीक शैली में प्रस्तुत कर सकें। विचारों की कमी नहीं थी और अपने व्यवसाय से वह इसी उद्देश्य के लिए धन बचा रहे थे।

तो भी वे ऐसा कोई प्रकाशन कैसे निकाल सकते थे, जबकि श्रील भक्तिसिद्धान्त के वरिष्ठ शिष्य और विद्वान संन्यासी भी वैसा नहीं कर सके थे? अपने गुरुभाइयों में उन्होंने अपने को कभी कोई बड़ा विद्वान नहीं माना था। यद्यपि वे उन्हें कवि कहते थे और अब वे भक्तिवेदान्त कहलाने लगे थे, तब भी एक गृहस्थ होने के नाते उनसे आशा नहीं की जाती थी कि एक पत्रिका निकालने में वे अगुवा बनें या अपनी कोई निजी पत्रिका निकालें।

लेकिन समय बदल गया था; *दि हारमोनिस्ट* अंग्रेजी पत्रिका श्रील भक्तिसिद्धान्त के तिरोधान के कुछ समय पहले से प्रकाशित नहीं हुई थी। लगभग एक दशक बीत गया था, और गौड़ीय मठ मुकदमेबाजी में ही इतना व्यस्त था कि प्रचार के लिए उसके पास समय ही नहीं था। जिस अथक प्रयास के कारण दस वर्षों तक *नदिया प्रकाश* को प्रतिदिन लगातार प्रकाशित किया गया था, उसका तिरोधान हो गया था। विभिन्न स्थानों में स्थापित वे चारों प्रेस बन्द हो चुके थे, जो भक्तिविनोद ठाकुर के अधिकृत पुत्र के निर्देशन में दिव्य साहित्य का निरन्तर प्रकाशन कर रहे थे; कुंजबिहारी ने उन्हें बेच दिया था। समय बदल चुका था। गौड़ीय मठ केवल झगड़े में रत था, जबकि भक्ति-विहीन लोग विश्व-युद्ध में एक दूसरे का वध कर रहे थे।

६, सीताकांत बनर्जी पर अपने सामने के कमरे में बैठे अभय सोचते, लिखते, पाण्डुलिपि को सम्पादित करते और एक पत्रिका के लिए उसे टाइप करते। पृष्ठ के ऊपरी सिरे पर उन्होंने एक लम्बा चौकोर शब्द-चित्र बनाया। ऊपर बाईं ओर कोने में भगवान् चैतन्य का चित्र था, जो सूर्य की किरणों के समान प्रकाश की किरणों से देदीप्यमान था। नीचे दाईं ओर जन-समुदाय का छायाचित्र था, जो अंधेरे में डूबा था, किन्तु भगवान् चैतन्य से प्रकाश पाने की टोह में लगा था। और भगवान् चैतन्य और जन-समुदाय के बीच पत्रिका का नाम, *बैक टु गॉडहेड*, पताका की तरह फहरा रहा था। नीचे दाएँ कोने में लिखने की मुद्रा में बैठे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का चित्र था, जो विचारमग्न ऊपर देख रहे थे। शब्द-चिह्न के ऊपर आदर्श वाक्य अंकित था, "भगवान् प्रकाश हैं, अविद्या अंधकार है। जहाँ भगवान् हैं, वहाँ अविद्या नहीं है।" शब्द-चित्र के नीचे निम्नांकित पंक्तियाँ थीं :

सम्पादित और स्थापित
(कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी
प्रभुपाद के प्रत्यक्ष आदेश के अधीन)
श्री अभय चरण दे द्वारा

अपने व्यवसाय के सिलसिले में अभय छपाई का कुछ अनुभव पहले ही प्राप्त कर चुके थे, और पाण्डुलिपि पूरी होने के बाद वे उसे सरस्वती प्रेस में ले गये, जो उस समय बंगाल का सबसे अच्छा छापाखाना था। उन्होंने कलकत्ता के प्रतिष्ठित पुस्तकविक्रेता थैकर, स्पिक एंड कम्पनी को अपना एजेंट बनाया, जिसकी जिम्मेदारी थी कि वह पत्रिका का वितरण पुस्तक भण्डारों, पुस्तकालयों और कई विदेशों में करे।

लेकिन जब वह कागज खरीदने गये, तो उन्हें सरकारी प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ा। युद्ध और तज्जन्य कागज की कमी के कारण अभय ने जो कुछ लिखा था, सरकार उसका परीक्षण राष्ट्रीय आवश्यकताओं की कसौटी पर करना चाहती थी। संसार की इस संकटकालीन स्थिति में एक सामान्य नागरिक के धार्मिक पत्र को उच्च प्राथमिकता मिलना कठिन था।

कागज के लिए अभय की प्रार्थना यों-त्यों कारण बताकर अस्वीकृत कर दी गई, लेकिन वे अड़े रहे। उन्होंने अपील की कि भगवान् की शिक्षाओं की छपाई में कागज का इस्तेमाल बरबादी नहीं था और उस समय की संकट-ग्रस्त स्थिति में तो यह असामयिक नहीं था। अन्त में चौवालीस पृष्ठ के *बैक टु गॉडहेड* के प्रथम संस्करण को छापने की अनुमति उन्हें मिल गई।

अभय चरण ने अपने पाठकों का अभिवादन इस आदर्श वाक्य से किया कि, "भगवान् प्रकाश हैं, अविद्या अंधकार है।" जब मनुष्य भूल जाता है कि वह भगवान् की संतान है और शरीर से अपना तादात्म्य करता है, तब वह अज्ञान में होता है। वह उस मनुष्य के समान है, जो गाड़ी के कल-पुरजों के सम्बन्ध में तो जानता है, लेकिन चालक के बारे में कोई ज्ञान नहीं रखता।

> वर्तमान सभ्यता की यही सबसे बड़ी त्रुटि है। यह सभ्यता सचमुच अज्ञान या भ्रम से भरी है, इसलिए उसका परिवर्तन सैन्यीकरण में हो गया है। हर एक को अपनी शारीरिक सुख-सुविधाओं और शरीर से सम्बन्धित अन्य वस्तुओं की चिन्ता है। आत्मा की चिन्ता किसी को नहीं है, जो शरीर को संचालित करता है, यद्यपि एक लड़का भी जानता है कि मोटर-कार के कल-पुरजों का कोई मूल्य नहीं है,

यदि उसका चालक न हो। मानवता के विषय में यह खतरनाक अनभिज्ञता ही घोर अज्ञान है, जिसने सैन्यीकरण के रूप में खतरनाक सभ्यता को जन्म दिया है। यह सैन्यीकरण, जिसे मुलायम भाषा में राष्ट्रीयकरण कहा जाता है, मानव सम्बन्धों को समझने में बाह्य अवरोध-स्वरूप है। उस लड़ाई का कोई अर्थ नहीं है, जहाँ लोग विभिन्न रंग के पहरावों के लिए लड़ते हों। इसलिए शारीरिक उपाधि या रंगीन पहरावों का विचार किये बिना मानव-सम्बन्ध को समझने की घोर आवश्यकता है।

बैक टु गॉडहेड अधोहस्ताक्षर कर्ता द्वारा एक क्षीण प्रयत्न है मानव जाति को श्री भगवान् से जोड़ने का। यह प्रयत्न गौड़ीय मठ के क्रियाकलापों के यशस्वी संस्थापक और संचालक कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के निर्देशन में किया जा रहा है। इसका उद्देश्य मानवता के वास्तविक सम्बन्ध को परम भगवान् के केन्द्रीय सम्बन्ध से जोड़ना मात्र है।

इस तरह के साहित्य की तत्काल आवश्यकता की तीव्र अनुभूति सभी देशों के नेताओं को है; निम्नांकित वक्तव्यों से यह बात सहज ही स्पष्ट होगी।

सन् १९४४ की बात है। अभय का ध्यान विशेष रूप से विश्व-युद्ध के संकट की ओर गया। संसार के राजनैतिक नेता अपने देश-वासियों की तकलीफों और चीजों की कमी पर क्षोभ प्रकट कर रहे थे। चार साल की लड़ाई के बाद जिसमें लाखों जानों की आहुति पड़ चुकी थी, बीस साल के अन्दर आने वाला दूसरा विश्व युद्ध संसार को अब भी ध्वस्त किये जा रहा था। यद्यपि युद्ध का अन्त दिखाई पड़ने लगा था, लेकिन संसार के नेता उस पर उतनी प्रसन्नता और आशा नहीं व्यक्त कर रहे थे, जितनी थकान और अनिश्चयात्मकता। यदि इस युद्ध का अन्त हो भी जाये, तो क्या एक दूसरा और भी युद्ध होगा? क्या मनुष्य ने अब भी वह महत्त्वपूर्ण पाठ नहीं सीखा कि शान्तिपूर्वक कैसे रहा जाये?

अभय ने भारत के आर्चबिशप को उद्धृत किया, "भगवान् के मार्गदर्शन से भारत संसार को मानसिक संतुलन पर वापस ले जा सकता है।" उन्होंने संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति का उद्धरण दिया, "इसलिए संसार के नैतिक पुनरस्त्रीकरण का कार्यक्रम सशस्त्र संघर्ष के खतरों को कम करने में असफल नहीं हो सकता। इस तरह का नैतिक पुनरस्त्रीकरण बहुत प्रभावोत्पादक हो, इसके लिए उसे विश्वव्यापी समर्थन मिलना आवश्यक है।" उन्होंने भूतपूर्व राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर का उल्लेख किया, जिन्होंने कहा था कि संसार को नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों को अपनाने की आवश्यकता है। उन्होंने ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स के एक प्रस्ताव का हवाला दिया, जिसमें कहा गया था कि आध्यात्मिक सिद्धान्त सभी

जातियों की समान धरोहर है और मनुष्यों और राष्ट्रों को श्री भगवान् की प्रभुसत्ता को तुरन्त अंगीकार करने की आवश्यकता है। उन्होंने विंडेल विल्की का हवाला दिया, जिसने रूस से लौटने के बाद यह रिपोर्ट दी थी कि युद्ध में लाखों रूसी मारे जा चुके थे, घायल थे या खो गये थे और लाखों से भी अधिक लोग चीजों की भयानक कमी और परवशता में शीत ऋतु झेल रहे थे।

अभय ने लिखा, "रूसी जनता के विषय में जो सत्य है, वही अन्य देशों के बारे में भी सत्य है और हम भारतीयों को भी उसी कमी, उसी अभाव और उसी क्षोभ की अनुभूति से गुजरना पड़ रहा है।" उन्होंने ब्रिटेन के विदेश मंत्री एन्थनी इडेन का उद्धरण दिया, जो युद्ध की तबाहियों पर शोक और क्रोध से भरे थे; उन्होंने कैंटरबरी के आर्चबिशप को उद्धृत किया :

> संसार के हर कोने में लोग युद्ध के अभिशाप से उद्धार चाहते हैं। वे ऐसे संसार में रहना चाहते हैं, जहाँ शान्ति लौट आई हो और आज तक संसार की जिस कठिनाई और कटुता से उनका सामना रहा है, उससे उन्हें मुक्ति मिल गई हो। लेकिन ऐसा प्रायः होता है कि वे स्वर्ग के राज्य को उसके राजा के बिना ही चाहते हैं। भगवान् के राज्य को भगवान् के बिना। और ऐसा हो नहीं सकता।
>
> हमारा संकल्प होना चाहिए भगवान् को पुनः प्राप्त करने का। हम योजनाएँ बनाते हैं, राष्ट्रों के बीच भावी शान्ति के लिए और देश में सामाजिक सुरक्षा के लिए। यह बिल्कुल ठीक है और उसकी उपेक्षा करना गलत होगा। लेकिन हमारी सारी योजनाएँ मानव स्वार्थ की चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जायेगी, यदि हम भगवान् का सहारा नहीं लेते। भगवान् की शरण जाओ, इंगलैंड की और हर राष्ट्र की यही मुख्य आवश्यकता है।

उन्होंने इंगलैंड के सर फ्रेंसिस यंग हसबैंड से भी उद्धरण दिया : "इस समय जब धर्म पर भयानक आक्रमण हो रहा है, हमारा ध्यान मार्गदर्शन के लिए भारत की ओर जाता है, जो धर्म का जन्म-स्थल रहा है।" और अन्त में उन्होंने सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को उद्धृत किया :

> यदि हम शान्ति की रक्षा न कर सके, तो यह युद्ध, जीत जाने के बाद, अन्य युद्धों की भूमिका सिद्ध होगा। शान्ति की रक्षा तभी सम्भव है, जब शक्तिशाली राष्ट्र अपने उन आधिपत्यों पर गर्व करना और शान बघारना छोड़ दें, जो दुर्बल राष्ट्रों के

> श्रम और योगदान से प्राप्त है। कदाचित् सर हरकोर्ट बटलर का यही आशय था, जब उन्होंने कहा था कि हिन्दुत्व के सिद्धान्तों में संसार की सभ्यताओं को बचाने के लिए सभी मूलभूत तत्त्व उपस्थित हैं।

और डॉ. राधाकृष्णन् के एक दूसरे उद्धरण के रूप में अभय ने वह वक्तव्य प्रस्तुत किया, जिसे उन्होंने अपनी पत्रिका के आदर्श-वाक्यों में से एक आदर्श-वाक्य प्रयुक्त किया :

> हमें विचार के संसार में अत्याचार पर विजय प्राप्त करना है और विश्व-शान्ति के लिए संकल्प का सृजन करना है। मन को प्रशिक्षित करने और मानव स्वभाव का संस्कार करने वाले उपकरणों का प्रयोग समुचित सामाजिक दृष्टिकोण विकसित करने में किया जाना चाहिए, जिसके बिना संस्थागत यंत्र-विधान व्यर्थ है।

अभय ने विश्वास प्रकट किया कि भारत के आध्यात्मिक साधनों का उपयोग हर एक के हित के लिए किया जाना चाहिए, न केवल भारत की महिमा के संवर्धन के लिए, वरन् समग्र विश्व के कल्याण के लिए।

आगे उन्होंने बताया कि उन्होंने *बैक टु गॉडहेड* पत्रिका का आरम्भ कैसे किया—कैसे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के तिरोधान के दो सप्ताह पहले उन्होंने उनको एक पत्र लिखा था और कैसे उनके आध्यात्मिक गुरु ने उन्हें अंग्रेजी में प्रचार के लिए आदेश दिया था :

> सन् १९३६ ई. से अब तक मैं केवल इस सोच-विचार में पड़ा रहा कि बिना किसी साधन और क्षमता के मैं इस कठिन कार्य में हाथ लगाऊँ या नहीं; लेकिन चूँकि मुझे किसी ने हतोत्साहित नहीं किया, इसलिए मैंने इसे अब आरम्भ करने का साहस किया है... लेकिन इस समय मेरा विवेक मुझे आदेश दे रहा है कि मैं इस कार्य को आंरभ करूँ यद्यपि युद्ध की परिस्थितियों से जनित वर्तमान कठिनाइयाँ समाप्त नहीं हुई है।

अभय ने कहा कि उनकी पत्रिका में भारत के महान् ऋषियों के और विशेषकर भगवान् चैतन्य के केवल दिव्य सन्देश प्रकाशित होंगे और उनका कर्तव्य, एक अनुवादक की भाँति, केवल उनकी पुनरावृत्ति करना होगा। वे कुछ निर्मित नहीं करेंगे, और उनके

शब्द लोगों को श्रीभगवान् की ओर वापस ले जाने वाली दिव्य ध्वनि की भाँति अवतरित होंगे। उन्होंने स्वीकार किया कि *बैक टु गॉडहेड* की विषयवस्तु, चेतना के बिल्कुल भिन्न क्षेत्र की होने के कारण पाठकों को शुष्क लग सकता है, लेकिन उनका दावा था कि जो कोई उनके सन्देश को सचमुच ध्यानपूर्वक पढ़ेगा, वह लाभान्वित होगा।

> मिश्री उन लोगों को कभी मीठी नहीं लगती, जो पित्त-रोग से पीड़ित हैं, लेकिन फिर भी मिश्री पित्तरोग के रोगियों के लिए औषध है। रोग से मुक्ति पाने के लिए यदि पित्तरोग का रोगी मिश्री का नियमित सेवन करता है, तो धीरे-धीरे मिश्री उसे मीठी लगने लगेगी। हम *बैक टु गॉडहेड* के पाठकों के लिए भी उसी प्रक्रिया की संस्तुति करते हैं।

अभय ने वेदों के सनातन सन्देश को प्रस्तुत करने पर ध्यान केन्द्रित किया, लेकिन उस समय की संकटापन्न स्थिति के सन्दर्भ में। अपने "श्री भगवान् और उनकी शक्तियाँ" नामक निबन्ध में उन्होंने वैदिक साक्ष्य और युक्तिपूर्ण दलीलों के आधार पर श्री भगवान् और एकाकी आत्माओं की दिव्य प्रकृति की व्याख्या की और सिद्ध किया कि वे अमर, आनन्दमय और ज्ञानमय हैं। चूँकि मनुष्यों ने श्री भगवान् के प्रति अपने जीवन्त सम्बन्ध को भुला दिया है और उनकी उपेक्षा की है, इसलिए वे इस भौतिक संसार में कभी संतोष नहीं प्राप्त कर सकते, जो अस्थायी है और अनिवार्य कष्टों से ग्रस्त है। आत्मा के रूप में हर व्यक्ति स्वभाव से शाश्वत है, इसलिए प्रत्येक जीव विपत्तियों और आपदाओं के आक्रमण से बचने का प्रयत्न करता है, जो एक-एक करके आती रहती हैं। लेकिन भौतिक शरीर दुख भोगने और अन्त में नष्ट हो जाने के लिए है।

> कलकत्ता के निवासियों का जापानियों की बमबारी के डर से बीतने वाला जीवन उसी अनश्वर प्रवृत्ति के कारण है। लेकिन वे लोग जो इस प्रकार जीवन जी रहे हैं, भूल जाते हैं कि कलकत्ता से चले जाने और जापानी बमों से बच जाने पर भी, वे इस भौतिक जगत के किसी भी भाग में अपने शरीरों को अनश्वर के रूप में बचा नहीं सकेंगे, जब उन शरीरों पर तीन प्रकार के दुखों के रूप में जड़ प्रकृति की बम-वर्षा होने लगेगी।
>
> जापानी भी, जो दूसरों की भूमि पर अधिकार जमाकर अपना सुख-चैन बढ़ाने के लिए निर्मम बम-वर्षा द्वारा कलकत्ता के निवासियों को धमका रहे हैं, नहीं जानते कि उनका यह सुख-चैन भी अस्थायी और नश्वर है, जैसाकि अपने ही देश

> में उन्होंने बार-बार अनुभव किया है। दूसरी ओर, जिन जीवों के वध की योजनाएँ बनाई जा रही हैं, वे प्रकृत्या शाश्वत अभेद्य और अदृश्य हैं। इसलिए वे सभी जीव जिनको मारने की धमकियाँ दी जा रही हैं और वे जो विजय की धमकियाँ दे रहे हैं, समान रूप से माया-शक्ति के वशीभूत हैं, अतएव अंधकार में हैं।

अभय ने लिखा कि अपने निजी उपायों द्वारा मनुष्य कभी भी विनाश की स्थिति से नहीं बच सकता। संसार के कितने ही नेता युद्ध से मुक्ति चाह रहे थे, लेकिन वे असफल हुए, क्योंकि शान्ति के लिए उनके सारे प्रयत्न जीवन की भौतिक धारणा से बद्ध थे। उनके प्रयत्न अंधकार को अंधकार से दूर करने के प्रयत्न के समान थे। किन्तु अंधकार का निवारण तो केवल प्रकाश से ही हो सकता है।

> प्रकाश के बिना मनुष्य का मन (जो स्वयं भी भौतिक प्रकृति से उत्पन्न है) चाहे वह कितना भी चिन्तन करे, जीवों को स्थायी शान्ति नहीं प्रदान कर सकता। उस अंधकार में संसार में शान्ति स्थापना के किसी भी उपाय से... केवल क्षणिक सुख या दुख मिल सकता है, जैसाकि बाह्य शक्ति की सृष्टियों से हम देख सकते हैं। अंधकार में अहिंसा उसी तरह बेकार है जैसे हिंसा, जबकि प्रकाश में न हिंसा की आवश्यकता है और न अहिंसा की।

अभय ने एकमात्र युद्ध पर विचार नहीं प्रकट किया। *थियोसोफी एन्ड्स इन वैष्णविज्म* नामक लेख में उन्होंने *थियोसोफी* के प्रचलित विचारों की कमियों की आलोचना की, जिन्हें मैडम ब्लैवटस्की के अनुयायियों ने भारत में लोकप्रिय बना रखा था।

कांग्रिगेशनल चैटिंग नामक लेख में उन्होंने इस शास्त्रीय भविष्यवाणी का समर्थन किया कि भगवान् चैतन्य का संकीर्तन आन्दोलन पृथवी-तल पर हर कस्बे और गाँव में फैलकर रहेगा।

> इस भविष्यवाणी से हमें आशा करनी चाहिए कि संकीर्तन उपासना-पद्धति बहुत शीघ्र धार्मिक आन्दोलन का विश्वव्यापी रूप ग्रहण करेगी, और यह विश्व-धर्म—जिसमें भगवान् का नाम भजने में कोई हानि नहीं है और न कलह का कोई प्रश्न है—वर्षों तक चलता रहेगा, जैसाकि प्रामाणिक धर्मग्रंथों के पृष्ठों से हम जान सकते हैं।

बैक टु गॉडहेड का मूल विषय स्पष्टतः भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का आदेश पालन था। पत्रिका के मुख पृष्ठ पर अंकित विचारमग्न श्रील भक्तिसिद्धान्त के चित्र से, उनके 'समर्पण' से, उनके उद्देश्य के कथन से, उनके अंकों के सम्पादन से, उनके *थियोसोफी* के विश्लेषण से, संकीर्तन के प्रसार-विषयक उनकी भविष्यवाणी से—उनके प्रत्येक पहलू से *बैक टु गॉडहेड* का मूल विषय श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का आदेश-पालन था।

अन्य लेखकों द्वारा चार छोटे निबन्ध भी थे, जिनमें एक भक्तिसारंग गोस्वामी का था।

आवरण-पृष्ठ पिछले पर एक विज्ञापन छपा था :

गीतोपनिषद्
लेखक
अभय चरण दे
सम्पादक एवं संस्थापक *बैक टु गॉडहेड*
तीन भागों में, १२०० पृष्ठ, रायल साइज
उत्तम मोरक्को जिल्दसाजी

विश्वविख्यात हिन्दू दर्शन—भगवद् गीता—की विस्तृत-टीका; श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, नारद, व्यास, मध्व, माधवेन्द्र पुरी, ईश्वर, भगवान् चैतन्य, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी, कृष्णदास, नरोत्तम, विश्वनाथ, बलदेव, जगन्नाथ, ठाकुर भक्तिविनोद, गौरकिशोर, ठाकुर सिद्धान्त सरस्वती की शिष्य परम्परा की शृंखला से वर्तमान लेखक तक सच्ची, वैज्ञानिक ईश्वरवादी व्याख्या सहित।

बहुत से प्रामाणिक धर्मग्रंथों से लिए गये अनेक सादे और रंगीन चित्रों से अलंकृत।
शीघ्र प्रकाश्य—अग्रिम ग्राहक बनने वालों के लिए
मूल्य १८ रुपए—विदेशों में १ पाउंड १० शिलिंग।

और एक दूसरा महान् ग्रंथ *भगवान् चैतन्य*—दो भागों में, पृष्ठ संख्या एक हजार। वास्तव में इन ग्रंथों में पूरा होने के निकट कोई नहीं था, लेकिन अभय, अपने आध्यात्मिक गुरु की ओर से ऐसे महान् ग्रंथों को लिखने के लिए अपनी तत्परता व्यक्त कर रहे थे।

बैक टु गॉडहेड का दूसरा अंक प्रकाशित करने में अभय को पहले जैसी ही कठिनाई हुई; उन्होंने अखबारी कागज खरीदने के लिए दो बार अनुमति माँगी और दोनों बार

सरकार ने अनुमति देने से इनकार कर दिया। युद्ध के कारण कागज पर पाबन्दी थी। १० जुलाई १९४४ को अभय ने तीसरा पत्र लिखा।

> सविनय निवेदन है कि गौड़ीय वैष्णवों के आध्यात्मिक गुरु, कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज के आदेशानुसार मैंने *बैक टु गॉडहेड* शीर्षक से एक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया है। संसार इस समय जिस अशान्ति से गुजर रहा है, उसमें पत्रिका का नाम ही उसके उद्देश्य को सूचित करता है। उसकी एक प्रति आपके अवलोकनार्थ संलग्न है। इस पत्रिका में आप संसार के बहुत से विख्यात राजनीतिज्ञों के भी जोरदार मत इस तरह के आन्दोलन के पक्ष में पाएँगे, जो निश्चल आध्यात्मिक स्तर के लिए, जो मानव की सर्वोच्च आवश्यकता है, मानव के मन और प्रकृति को प्रशिक्षित करके उसे मानवता की सर्वाधिक अभिलषित वस्तु, विवेक की ओर वापस ले जा सकें। मुझे आशा है कि आप पत्र को पढ़ने के लिए कुछ समय निकालेंगे, विशेषकर उसके प्रस्तावना-भाग के लिए।

अभय ने यह भी टिप्पणी जोड़ दी कि *बैक टु गॉडहेड* के सम्पादक-मण्डल को लगता है कि कागज की उतनी कमी नहीं है, जितनी शिक्षा की। प्रचार के अवसर का लाभ उठाते हुए, अभय ने कहा यद्यपि, हर वस्तु के अन्तिम पूर्तिकर्ता श्री भगवान् हैं, नास्तिक लोग समझते हैं कि सभी चीजों के स्वामी वे ही हैं।

> सर्वाधिपत्य की प्राप्ति के लिए चल रहे वर्तमान युद्ध में जो अनर्थ निहित है, वह केवल स्वामित्व की इसी मिथ्या भावना से पोषित है; इसलिए समस्त मानव-समाज में ऐसे प्रचार की आवश्यकता है, जो उसमें यह विवेक जगा सके कि संसार की वस्तुओं पर आखिरी स्वामित्व श्री भगवान् का है।

अभय ने यह बात स्वीकार की कि भारत में सचमुच कागज की कमी हो सकती है। उन्होंने लिखा कि प्राचीन युगों में प्रबुद्ध भारतीय यज्ञ की अग्नि में मनों बहुमूल्य घी और अन्न की आहुति दिया करते थे और उन दिनों इनका कोई अभाव नहीं होता था। किन्तु अब परम भगवान् के सभी यज्ञों का परित्याग करके लोग केवल अभाव की सृष्टि कर रहे हैं।

> इसलिए बहुत सारे अपव्ययों के बीच क्या हम मनुष्य जाति के महत्तर लाभ के लिए कुछ रीम कागज का उत्सर्ग नहीं कर सकते? मेरी प्रार्थना है कि सरकार

> इस विशेष मामले पर आध्यात्मिकता के प्रकाश में विचार करें, जिसमें भौतिक लेखा-जोखा का मामला नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन में भी इसी तरह के एक आन्दोलन को, जिसका नाम *मोरल-री-आर्मामेंट मूवमेंट* है, सरकार ने प्रबल समर्थन दिया है, कागज के अभाव का विचार किये बिना जो यहाँ की तुलना में वहाँ ज्यादा संगीन है।
>
> *बैक टु गॉडहेड* के लिए अधिक नहीं तो केवल एक पन्ना दीजिए; हमें इसकी चिन्ता नहीं है। लेकिन मेरी सच्ची प्रार्थना है कि सरकार उस वातावरण का संचार होने दे, जो मेरी पत्रिका *बैक टु गॉडहेड* का उद्देश्य है। इसलिए कृपया इस पर गम्भीरता से विचार करें और मुझे हर सप्ताह या हर महीने, जैसाकि आप उचित समझें, मानवता के लिए और श्री भगवान् के लिए कम से कम एक पृष्ठ ही प्रकाशित करने दें और उसे कागज की साधारण बरबादी न समझें।

पत्र को सफलता मिली। अब प्रच्छन्न व्यंग्य के साथ उन्होंने दूसरे अंक के आरम्भ में लिखा, "भारत सरकार को धन्यवाद।" उन्होंने अपने पाठकों को, जिनमें से बहुतों को यह जानकर निराशा हुई थी कि सरकार ने उसके छपने पर पाबन्दी लगा दी है, सूचित किया कि पत्रिका हर महीने प्रकाशित हुआ करेगी। अभय ने सरकारी कागज अधिकारी को लिखा गया अपना पत्र और अनुमति देने वाला उसका उत्तर भी प्रकाशित कर दिया।

इस बार उनके लेख एक समाचार पत्र के स्तम्भकार की सूक्ष्मदर्शी प्रवृत्ति को लिए हुए पहले से छोटे थे। संसार के नेताओं और संकटापन्न स्थितियों पर उनकी टिप्पणियाँ दार्शनिक आलोचना, ओजपूर्ण और व्यंग्यात्मक परिहास से भरी थीं। 'गाँधी-जिन्ना वार्ता,' 'श्रीमान् चर्चिल का मानवतापूर्ण संसार,' 'श्रीमान् बर्नार्ड शा की अभिलाषा,' 'श्री भगवान् का स्वतः स्फूर्त प्रेम' इस अंक के लेख थे।

"गाँधी-जिन्ना-वार्ता" : "हमें यह जानकर दुख हुआ है कि भारतीय जनता की एकता के लिए चलने वाली गाँधी-जिन्ना-वार्ता सम्प्रति विफल हो गई है।" अभय "कई सम्प्रदायों के नेताओं के बीच यदा-कदा चलने वाली इस तरह की वार्ताओं" के परिणाम के विषय में बहुत आशावान् नहीं थे। यदि उन्होंने कोई सफल समाधान निकाल भी लिया, तो वह भंग हो जायेगा और दूसरी समस्या का रूप ग्रहण कर लेगा। वे हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए कामना कर रहे थे, लेकिन योरप में युद्ध करने वाले गुट सभी ईसाई थे और एशिया में अधिकतर बौद्ध थे, फिर भी वे लड़ रहे थे। "इसलिए लड़ाई चलती रहेगी, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच, हिन्दुओं और हिन्दुओं के बीच, मुसलमानों और मुसलमानों के बीच, ईसाइयों और ईसाइयों के बीच, बौद्धों और बौद्धों के बीच, जब तक

कि सबकी समाप्ति नहीं हो जायेगी।" जब तक इन्द्रिय-सुख का दूषित स्वार्थ बना रहेगा, तब तक भाई से भाई की, पिता से पुत्र की और राष्ट्र से राष्ट्र की लड़ाई चलती रहेगी। वास्तविक एकता केवल परम भगवान् की आध्यात्मिक सेवा के स्तर पर निर्भर करेगी। अभय ने लिखा कि, "महात्मा गाँधी सामान्य व्यक्तियों से ऊपर हैं और हम सब उनका सम्मान करते हैं।" लेकिन अभय ने गाँधीजी को सलाह दी कि वे भौतिक स्तर पर अपने सारे क्रियाकलाप बन्द कर दें और आत्मा के दिव्य स्तर पर पहुँच जाँये—तभी लोगों की एकता के बारे में बातें हो सकती हैं। अभय ने 'महात्मा' की परिभाषा के सम्बन्ध में *गीता* से उद्धरण दिया : महात्मा वह है, जो अपना ध्यान परम भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में केन्द्रित करता है। उन्होंने गाँधीजी से प्रार्थना की कि वे *भगवद्गीता* की शिक्षाओं पर दृढ़ रहें और परम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण के सन्देश का प्रचार करें। इस तरह महात्मा गाँधी संसार में अपनी प्रभावशाली स्थिति के द्वारा केवल *भगवद्गीता* के सन्देश का प्रचार करके विश्व-शान्ति ला सकते थे।

"श्रीमान् चर्चिल का 'मानवतावादी संसार'" :

> यह देखकर खुशी होती है कि श्रीमान् चर्चिल जैसे विश्व-राजनीति के नेता अब मानवतावादी संसार के सम्बनध में विचार करने लगे हैं और घृणा के भयानक राष्ट्रीय उन्माद से मुक्त होने की चेष्टा करने लगे हैं। घृणा का उन्माद प्रेम के उन्माद का दूसरा पहलू है। अपने देशवासियों के प्रति हिटलर के प्रेम के उन्माद ने दूसरों के लिए उसकी घृणा के उन्माद को जन्म दिया है और वर्तमान युद्ध प्रेम और घृणा के द्विपक्षीय उन्माद का परिणाम है। इसलिए जब हम घृणा के उन्माद से मुक्त होना चाहें, तो हमें तथाकथित प्रेम के उन्माद से भी मुक्त होने के लिए तैयार होना चाहिए। प्रेम और घृणा से मुक्त इस तरह के संतुलन की स्थिति तभी प्राप्त होती है, जब लोग भलीभाँति शिक्षित हों।

जब तक लोग इतने शिक्षित न हो जाँए कि अपने शरीर में स्थित आत्मा को देख सकें, तब तक प्रेम और घृणा का दुहरा उन्माद बना रहेगा और एक मानवतावादी संसार सम्भव न होगा। अभय ने समापन करते हुए लिखा कि, "यह आत्म-निरीक्षण श्री भगवान् की सेवा से सहज ही... प्राप्त किया जाता है। अत: श्रीमान् चर्चिल के मानवतावादी संसार का आशय यही है कि हम श्री भगवान् की ओर उन्मुख हों।"

"श्रीमान् बर्नार्ड शा की अभिलाषा" :

श्रीमान् बर्नार्ड शा ने महात्मा गाँधी को उनके ७६ वें जन्म-दिवस पर इन शब्दों में बधाई दी है : "मैं चाहता हूँ कि श्रीमान् गाँधी के ७६ वें जन्म-दिवस के स्थान पर यह ३५ वां जन्म-दिवस होता।" महात्मा गाँधी की वर्तमान अवस्था से ४१ वर्ष कम कर देने के श्रीमान् शा के प्रयत्न में हम सब हृदय से साथ हैं।

लेकिन मृत्यु हमारी 'मिथ्या अभिलाषा' का आदर नहीं करती। न तो श्रीमान् शा, न महात्मा गाँधी, और न कोई अन्य महान् पुरुष कभी भी मृत्यु की समस्या का समाधान दे सका है।

राष्ट्रों के नेताओं ने संहार के उपकरण बनाने वाले बहुत से कारखाने... खोले हैं, लेकिन ऐसी कोई फैक्टरी किसी ने भी स्थापित नहीं की है, जहाँ मृत्यु के क्रूर हाथों से मनुष्यों की रक्षा करने के लिए हथियार बनाए जाते हों, यद्यपि हमारी यही इच्छा रहती है कि हम कभी न मरें।

मनुष्य हमेशा से रोटी की समस्या का समाधान ढूँढने में लगा रहा है, यद्यपि प्रकृति ने यह समस्या सचमुच हल कर रखी है। मनुष्य को मृत्यु की समस्या का समाधान ढूँढना चाहिए।

भगवद्गीता बताती है कि मृत्यु की समस्या का समाधान हो सकता है। यद्यपि इस भौतिक संसार में मृत्यु का सर्वत्र राज है, भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, "जो मुझे प्राप्त कर लेता है, उसे इस मर्त्यलोक में फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।" एक आध्यात्मिक संसार है जो अविनाशी है, और जो कोई वहाँ पहुँच जाता है, वह फिर मृत्यु-लोक में नहीं आता। संसार के नेता अपने जन्म के ही लोक से क्यों चिपके रहते हैं, जहाँ मृत्यु अनिवार्य है? निष्कर्ष के रूप में अभय ने लिखा, "हम चाहते हैं कि अपनी वृद्धावस्था में श्रीमान् शा और महात्मा गाँधी सम्मिलत रूप में लोगों को शिक्षित करने का प्रयत्न करें कि वे वापस घर, अर्थात् श्री भगवान् के पास कैसे पहुँचें।"

• • •

बैक टु गॉडहेड के दो अंक निकालने के बाद अभय को रुक जाना पड़ा। छपाई महंगी थी। लेकिन *गीतोपनिषद्* पर उन्होंने कार्य जारी रखा, वे बराबर लिखते रहे।

धर्मशास्त्रों पर नये लेख और उनके दार्शनिक तात्पर्य भी वे लिखते रहे। इन्हें वे उन रजिस्टरों में भी लिख डालते, जिनमें वे दवाइयों के फारमूले लिखते थे।

• • •

एक रात अभय ने एक असामान्य स्वप्न देखा। श्रील भक्तिसिद्धान्त उनका आवाहन करते हुए उनके सामने प्रकट हुए। वे अभय से घर छोड़ने और संन्यास लेने को कह रहे थे। अभय गहरी भावोत्तेजक दशा में जाग पड़े। "यह कितना भयावह है!" उन्होंने सोचा। वे जानते थे कि यह कोई मामूली सपना नहीं था। लेकिन उनसे की गई माँग कितनी कठिन और असंभाव्य लग रही थी! संन्यास लो! यह कोई साधारण चीज नहीं थी, जिसे वे तुरन्त कर सकते थे। उन्हें अपना धंधा बढ़ाना था और उसके लाभ से पुस्तकें छापनी थीं। वे अपने कर्तव्य के पालन में लगे रहे, लेकिन स्वप्न उन्हें विचलित करता रहा।

• • •

सन् १९४५ ई. में युद्ध समाप्त हो गया और अंग्रेज शासन के अधीन भारत में तब भी अशान्ति बनी रही। अभय को अपना धंधा और आगे बढ़ाने के लिए यह अच्छा अवसर प्रतीत हुआ। कलकत्ता से छह सौ मील दूर लखनऊ में उन्होंने किराए पर एक मकान लिया और उसमें अभय चरण दे एंड संस नाम से अपनी निजी फैक्टरी खोली।

फैक्टरी को शुरू करने में चालीस हजार रुपए की भारी पूँजी लगी। पहले की अपेक्षा उन्होंने कार्य बड़े पैमाने पर शुरू कर दिया। कानून के अनुसार, इस बात को निश्चित करने के लिए कि वे चोरबाजारी नहीं करते या रासायनिकों का दुरुपयोग नहीं करते, उन्हें तीन सरकारी निरीक्षक भी रखने पड़े। भारी खर्च के होते हुए भी उन्होंने अपनी साख जमा ली और उनके उत्पादनों की माँग बढ़ चली। कलकत्ता का छोटा कारोबार बन्द करके, उन्होंने लखनऊ के धंधे पर ध्यान केन्द्रित किया।

यद्यपि स्थानीय धारणा यह थी कि उनका मकान भूतों का बसेरा है, फिर भी अभय उससे डरे नहीं। किन्तु जब काम शुरू हुआ, तो उनके कुछ श्रमिक भय-त्रस्त होकर उनके पास पहुँचे और बोले, "बाबू, बाबू, वहाँ भूत है!" तब अभय हरे कृष्ण गाते हुए पूरे मकान का चक्कर लगा आये और उसके बाद भूत की शिकायत कभी नहीं मिली।

१३ नवम्बर को अभय ने अपने सेवक गौरांग को पत्र लिखा और उसमें लखनऊ की कुछ कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए अपनी सहायता के लिए उसे बुलाया। इस पत्र में अभय ने अपनी पत्नी राधारानी और बच्चों के विषय में कड़वी बातें लिखीं।

गौरांग प्रभु,

मेरा नमस्कार स्वीकार करें। तुम्हारा दिनांक ७ का पत्र मिला। समय के अभाव के कारण मैं जवाब नहीं दे सका। मैं यहाँ कुछ नौकरों के साथ अकेला रहता हूँ। यदि मैं अभी यहाँ से जाऊँ, तो मुझे सबकुछ बन्द करना पड़ेगा। एक बार यहाँ से जाने और कारोबार बन्द करने से मुझे दस हजार रुपए का घाटा हुआ है और मेरी साख भी कम हो गई है और मेरे प्रतिद्वन्द्वियों की संख्या बढ़ गई है। इसलिए मैं संघर्ष कर रहा हूँ और सचमुच अपने जीवन की बाजी लगाए हूँ। मैं यहाँ अकेला ही, इतनी सारी कठिनाइयों के बीच, व्यर्थ ही नहीं रह रहा हूँ। इसीलिए मैं तुम्हें यहाँ आने के लिए बार बार लिख रहा हूँ। इस पत्र के पाते ही तुम इसे दुब्रा को दिखलाना। उससे कम से कम दस रुपए लेना और यहाँ आ जाना। जब तुम यहाँ आ जाओगे मैं तुम्हारे घर भेजने के लिए धन की व्यवस्था करूँगा। वहाँ तुम्हें इस बहाने से रोकने का क्या अर्थ है कि वहाँ कोई नौकर या नौकरानी नहीं है? नौकर, नौकरानी और रसोइया रखकर मैंने उनकी सेवा करने का पर्याप्त प्रयत्न किया है। लेकिन आज तक उनमें भक्ति नहीं जगी है। इसलिए अब उन मामलों में मेरी कोई रुचि नहीं रह गई है। जब तुम यहाँ आओगे, तब मैं कलकत्ता जाऊँगा। यदि मुझे पता लगा कि भक्ति में उनकी अभिरुचि है, तभी मैं कलकत्ता में गृहस्थी रखूँगा, अन्यथा मैं उनकी जिम्मेदारी अपने ऊपर अधिक नहीं लूँगा। मेरे लिए एक रजाई लाना।

तुम्हारा,
अभय

परिवार और प्रचार, दोनों हितों में परस्पर-विरोध था। राधारानी ने *बैक टु गॉडहेड* में कोई अभिरुचि कभी नहीं दिखाई थी। अभय में प्रकाशन और धंधे के प्रति जो उत्साह था, राधारानी उसके विरुद्ध थीं। धंधे का नाम था अभय चरण दे एंड संस, तो भी लड़कों की रुचि सहायता करने में नहीं थी और जब अभय ने नौकर को अपनी सहायता के लिए लखनऊ बुलाया, तव पूरे परिवार ने आपत्ति की थी, यह कहकर कि गौरांग की उन्हें ज्यादा जरूरत है।

क्या लाभ? परिवार की रुचि न तो धंधे में उनकी सहायता करने में थी और न उसे भक्ति वाला जीवन पसन्द था। और चूँकि उनका धंधा मूलतः उनके पारिवारिक जीवन के लिए था, अभय को बुरा लगता था कि उसके लिए उन्हें अपनी इतनी शक्ति व्यय करनी पड़ती है। उन्होंने कालेज में मार्शल के पुराने आर्थिक नियम को पढ़ा था कि, "बिना

पारिवारिक प्रेम के मनुष्य की आर्थिक प्रेरणा कमजोर हो जाती है।"

निस्सन्देह, परिवार की सेवा और श्री भगवान् की भक्ति में अनुकूल संतुलन हो सकता था। भक्तिविनोद ठाकुर ने एक-साथ दो दायित्वों का वर्णन किया था; शारीरिक और आध्यात्मिक। सामाजिक दर्जा, मस्तिष्कीय विकास, स्वच्छता, पौष्टिकता, और अस्तित्व के लिए संघर्ष—ये शरीर के प्रति दायित्व थे। कृष्ण की भक्ति सम्बन्धी कार्यकलाप आध्यात्मिक थे। दोनों को एक दूसरे के समानान्तर चलना चाहिए। भक्तिविनोद ठाकुर के जीवन में उनका परिवार आध्यात्मिक प्रोत्साहन का स्रोत था और अपनी सामाजिक स्थिति का उपयोग उन्होंने प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने में किया।

लेकिन अभय का अनुभव भिन्न रहा था। उनके जीवन में दोनों दायित्वों में लड़ाई रही थी; एक दूसरे को समाप्त कर देने की धमकी देता रहा था। अभय को लगता कि वे उन भौतिकतावादियों की तरह कार्य कर रहे हैं, जिनकी अपने लेखों में वे आलोचना किया करते थे। अस्तित्व के लिए संघर्ष में डूबे हुए अभय को आत्मोपलब्धि के लिए बहुत थोड़ा समय मिलता था। यद्यपि उनके परिवार की माँग उन पर बढ़ती जा रही थी, लेकिन उसके प्रति उनकी रुचि कम हो रही थी और कृष्णभावनामृत के प्रचार में वह बढ़ रही थी। यह कठिनाई थी। वे परिश्रमपूर्वक आगे बढ़ना चाहते थे, परिवार का भरण-पोषण करना चाहते थे, धंधे का विस्तार करना चाहते थे और इस प्रकार ऐसी बड़ी सफलता पाना चाहते थे कि प्रकाशन का कार्य वे फिर आरम्भ कर सकें।

लेकिन लखनऊ की फैक्टरी उनके बूते से लगभग बाहर थी। जान-बूझकर उन्होंने काम बड़े पैमाने पर शुरु किया था, जिससे लाभ अधिक हो। लेकिन माहवारी खर्चे अधिक थे; किराया पिछड़ गया था और अब मकान मालिक के साथ वे मुकदमे में फँस गये थे। यद्यपि वे कलकत्ता नित्य जाते थे और वहाँ से लखनऊ के लिए कच्चा माल हर दिन रवाना करते थे, लेकिन उनके परिवार के लोग सहयोग नहीं देते थे। गौरांग भी उनके कहने के अनुसार काम करने को तैयार नहीं था और वह कलकत्ता वापस जाकर उनके परिवार के साथ रहने की सोचा करता था। अभय ने दिनांक २३ को गौरांग को फिर लिखा।

> वैष्णव के चरणों में मेरा विनम्र प्रणाम। गौरांग प्रभु, तुम्हारा १८/११/४५ का पोस्टकार्ड मिला और सभी समाचारों से मैं अवगत हुआ। पैसे खर्च करके एक महीने के लिए यहाँ आने और फिर वापस चले जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। दुब्रा से अभी २५ रुपये ले लो और घर चले जाओ। वहाँ पहुँचकर मुझे पत्र लिखना; तब मैं एक या दो किश्तों में तुम्हारे शेष पैसे मनीआर्डर से भेज दूँगा। तब वहाँ से मुझे बताना कि तुम यहाँ कब आ सकते हो।

मैंने यहाँ अपना काम काफी बड़े पैमाने पर आरम्भ किया है। तुमने स्वयं अपनी आँखों से उसे देखा है... इसलिए अगर आय नहीं होगी तो (अलादत में) जिरह के लिए पैसे कहाँ से आयेंगे? मेरे ही सिर पर सब कुछ है। भाई और लड़के खा-पीकर औरतों के समूह की तरह सो रहे हैं और सारी धमार मेरे सिर डाल रहे हैं।

ज्योंही पैसे मिलें, तुम घर चले जाना और जितनी जल्दी हो सके आने की कोशिश करना।

तुम्हारा

अभय चरण दे